आतंकवाद: नर्म राष्ट्र की गर्म हवा

नरेश भार्गव

विद्रोह, गृहयुद्ध, क्रांति, गोरिल्ला युद्ध, धमकी, उग्रवाद, आतंकवाद सभी में एक तथ्य समान है—हिंसा। आतंकवाद हिंसा का ही एक स्वरूप है। पर निश्चित ही आतंकवाद सामाजिक हिंसा इस संदर्भ में नहीं क्योंकि इसका उद्देश्य ही दूसरा है। यह हिंसा राजनीति की हिंसा है। इसीलिए आतंकवाद को साधारण मारपीट, डकैती, सांप्रदायिक दंगे, विद्रोह अथवा क्रांति से अलग करना पड़ेगा। बहुत सी सामाजिक हिंसाएं घरेलू हिंसाएं है—जिनका प्रतिकार कानून अथवा सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्थाएं कर सकती हैं।

वर्तमान में आतंकवाद के विविध स्वरूपों को देखते हुए आतंकवाद की कोई शाश्वत परिभाषा दे पाना कठिन काम है। पर आतंकवाद को राजनीतिक हिंसा के संदर्भ में परिलक्षित अवश्य किया जा सकता है। आतंकवाद का उद्देश्य भय पैदा करना है। इस दृष्टि से आतंकवाद एक साधन है, जिसका उद्देश्य जानबूझकर व्यक्ति तथा संपत्ति पर आघात कर ऐसा भय पैदा करना है, जिससे राजनीतिक हित सिद्ध हो सके। समुदायों में भय पैदा करने का यह साधन आतंकवादी समूह तैयार करते है और उसके प्रभावीकरण में रणनीतियां तथा तकनीक प्रयोग करते है। राजनीतिक दृष्टि से इसके दो संदेश स्पष्ट है। पहला तो यही कि स्थित राजनीतिक व्यवस्था को वे स्वीकार नहीं करते और राज्य सत्ता उनके सामने कमजोर है। दूसरा समाज को यह संदेश देना कि वह उन्हें स्वीकार

करे—अन्यथा सरकार की सुरक्षा के अभाव में जान-माल का नुकसान उन्हें ही झेलना है। समूहों में संगठित इस राजनीतिक हिंसा का सामना असंगठित, बिखरे हुए समूह नहीं कर सकते। अतः हिंसक समूहों की कार्यवाहियों का असर सामान्य जन पर पड़ता है और क्योंकि राज्य इस प्रकार की घटनाओं के लिए तैयार नहीं रहते अतः राज्य का मनोबल गिरता है। समाज के भय और राज्य के गिरे मनोबल के बीच ही आतंकवाद काम करता है। समाज में भय पैदा करने के लिए किसी भी आतंकवाद का लक्ष्य राज्य सत्ता अथवा सत्ता के प्रतिनिधि होंगे क्योंकि उन्हें ही सबसे अधिक सुरक्षित समझा जाता है। आतंकवाद का मनोविज्ञान इसी तथ्य पर केंद्रित है कि जब सुरक्षित लोग असुरक्षित है, तब आतंकवादी समूह, इन असुरक्षित लोगों से अधिक महत्वपूर्ण है और उनके आदेशों को लोगों को स्वीकार करना चाहिए।

क्योंकि आतंकवादी समूहों का उद्देश्य भय पैदा करना है—ऐसे समूहों की कार्य शैलियां भी अपनी हैं। बंधक बनाना, राजनीतिक नेताओं तथा सरकारी अधिकारियों को अगुवा करना, मानव बम, राष्ट्रीय संपत्ति को नष्ट करना आदि सभी इसी शैली के भाग है। अपने गिरोह के सदस्यों का प्रशिक्षण एवं ध्वंस करने के लिए नए से नए अधिकारों की उपलब्धि करना इसी शैली का हिस्सा है। यह बात दूसरी है कि इस शैली से पनपाये गए आतंकवादी स्वरूप का प्रयोग कैसे किया जाता है और उसके लिए धन कहां से जुटाया जाता है! आज के आतंकवाद की समस्या इसके वैश्वीकरण की है। इतिहास के विभिन्न समाजों एवं देशों में आतंकवादी गतिविधियों के अनेक प्रमाण मिलते हैं। पहली शताब्दी में फिलिस्तीन में सिकारी आंदोलन, ग्यारहवीं शताब्दी में हाशा शोम्सी का 'असासिन' आंदोलन, सभी कुछ राज्य सत्ता को आतंकवाद से हथियाने के प्रयास थे। उन्नीसवीं सदी में आते-आते ये आतंकवादी आंदोलन विचारधाराओं से जोड़े जाने लगे। इसीलिए आज आतंकवाद के साधन का प्रयोग करने वाले समूह अपने अस्तित्व तथा औचित्य के लिए विचारधाराओं का सहारा लेने लगे है और संभवतः इसी कारण विद्रोह, क्रांति तथा आम अपराध तथा आतंकवाद के बीच अंतर कर पाना बड़ा कठिन कार्य हो गया है। जम्मू कश्मीर लिबरेशन फ्रंट अपने आपको स्वातंत्र्य संग्राम संगठन कहता है तो नक्सलवादी अपने आपको सामाजिक क्रांतिकारी। ओसामा बिन लादेन के लिए आतंकवाद एक जेहाद है और चीन के मुसलमानों के लिए अपनी पहचान बनाने का आंदोलन। अपने ही तरह से वैचारिक आधार पर आतंकवाद के औचित्य सिद्ध करने के प्रयासों ने ही अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी संगठनों का निर्माण भी किया है। सीमा पार आतंकवाद के पीछे सोची समझी अंतर्राष्ट्रीय चालें तथा स्वार्थ है। महाशक्तियों ने अपने ही तरीके से इन गतिविधियों को प्रोत्साहित भी किया है। धार्मिक झगड़ों ने भी आतंकवाद को पनपाने के लिए अपनी ही तरह से कार्य किया है। भारत और आयरलैंड इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। भारत ने अपनी स्वाधीनता की लड़ाई में एक ओर अहिंसा का प्रयोग देखा था तो दूसरी बार हिंसा का। ब्रिटिश लोगों ने हिंसा के हिमायतियों को आतंकवादी ही कहा था जिसमें सरदार भगत सिंह, मन्मथ नाथ गुप्त, अशफाक लाहिड़ी, चंद्र सभी लिपट गए थे। पाकिस्तान जम्मू और काश्मीर के आतंकवाद को इसी श्रेणी में रखता है।

आखिर आतंकवाद पनपता क्यों है? इस संदर्भ में भारत में व्याप्त आतंकवाद की क्या समीक्षा हो सकती है? राजनीतिक अथवा आर्थिक उपलब्धियों को क्या लोग आतंकवाद से हासिल करना चाहते है? ये सवाल बड़े सवाल है तथा समय स्थान सापेक्ष है। आतंकवाद के सवाल समाज में उन साधनों अथवा तरीकों की अनुपलब्धि के साथ जुड़े हुए हैं, जो स्वाभाविक रूप में सहजता से प्राप्त हो जाते है। लोग इस अनुपलब्धि से उकताकर आतंकवाद का सहारा पकड़ लेते है। आर्थिक गैर-बराबरी, आर्थिक शोषण तथा सामाजिक गैर-बराबरी के स्थाई परिणाम आतंकवाद के पनपने का एक और कारण है। नक्सलवादी गतिविधियों को यदि आतंकवादी गतिविधियां कहें तो फिर उसके मूल कारण के लिए हमें गैर-बराबरी के इन्हीं संदर्भों के साथ जुड़ना पड़ेगा। नस्ली अथवा धार्मिक घृणा और अपनी नृजाति पर गर्वोक्ति का परिणाम भी आतंकवाद है। गई शताब्दी के प्रारंभ में कू कलकल कलाज नृजातीय तथा नस्ली विद्वेष का आतंकवादी संगठन था। हिटलर के नाजीवाद ने भी कुछ ऐसा ही किया था। भारत में सांप्रदायिक उग्रता ने कई ऐसे संगठन पैदा किए है जो आतंकवाद की श्रेणी

में आते है। कुछ लोग आतंकवाद की राजनीति भी चलाते है। शांति अथवा प्रजातांत्रिक साधनों के स्थान पर ऐसे समूहों की सिद्धि का साधन आतंकवाद ही है। अधिकांश आतंकवाद क्योंकि राजनीतिक लक्ष्यों का है, अतः हिंसा की राजनीति उन्हें रास भी आती है। विश्व राजनीति के षड्यंत्रों के दांवपेच भी आतंकवादी साधनों के साथ जुड़े हुए है। पाकिस्तान के लिए भारत के साथ बदला-आतंकवादी हथियारों के साथ ही है। अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति में आतंकवाद ने अपनी ही भूमिका निभाई है। राजनीतिक प्रतियोगिताओं में आतंकवाद शामिल करना बड़ा आसान है। भारतीय प्रजातंत्र के चुनावों में सवर्ण आतंकवाद मतदाताओं को रोकने का सबसे अच्छा तरीका है। वोट न पड़ने पाए—यह भी राजनीतिक सिद्ध का एक तरीका है। और जिन्हें हिंसा से ही आनंद आता हो उनके लिए भी आतंकवाद पीड़ा सुख का एक अच्छा तरीका है।

लगता है आतंकवाद की पीड़ा अब सर्वव्यापी है। लेबनान में हिजबुल्ला, ईरान में क्रांतिकारी सुरक्षा बल, इजराइल में फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन, अल्जीरिया में इस्लामिक मुक्ति संगठन और जॉर्डन का हम्मास—सभी आतंकवादी गतिविधि के संगठन है। आतंकवादी संगठनों की सूची में बर्मा का नेशनल डेमोक्रिटिक फ्रंट, फिलीपीन का न्यू पीपुल्स आर्मी, श्रीलंका का लिट्टे, जर्मनी के नियोनाजी और पीरू के शाइनिंग पाथ सम्मिलित है। लेकिन वर्तमान में विश्व के सबसे बड़े आतंकवादी समूह के रूप में अल कायदा उभरा जिसने हाल में अमेरिका के खिलाफ अपनी आतंकवादी गतिविधियों से इमारतें उड़ा डाली। अल कायदा की प्रेरणा से ही कश्मीर भी आतंकवादी गतिविधियों में घिरा और पाकिस्तान की कूटनीति के तालिबान, लश्कर ए तोइबा और जैश ए मुहम्मद मोहरे अल कायदा की तर्ज पर ही काम कर रहे है।

भारत में आतंकवादियों का अपना ही इतिहास है। बंग भंग के विरुद्ध आंदोलन में और फिर बाद में भारतीय स्वाधीनता संग्राम आंदोलन के दौरान आतंकवादी गतिविधियों का सिलसिला जारी हुआ था। हिंदुस्तान और पाकिस्तान रचना की लड़ाई सीधी लड़ाई थी। हिंदू और मुस्लिम के बीच बोए गए विद्वेष के बीजों से उत्पन्न यह लड़ाई सांप्रदायिक और सीधे-सीधे खून-खराबे और हिंसा के साथ जुड़ी हुई थी। भारत की स्वाधीनता के बाद जैसी राजनीतिक घटनाएं घटी उनमें अलगाववादी, भूमि क्रांतिकारी और परदेशीय आतंकवादी सभी प्रकार के समूह उभरे। नागा, मिजो, बोड़ो-उत्तरपूर्वी सीमांत क्षेत्र के आदिवासी आंदोलन है। उनकी जड़ें आदिवासी समाज की अपनी मान्यताओं तथा स्वतंत्र होने की इच्छाओं में निहित है। नक्सलवादी आंदोलन भूमिहीनता के संदर्भ में उभरा। नक्सलवाद उग्र वामपंथ का आंदोलन भी है। आंदोलन स्वयं यह स्वीकार करता है कि उसका रास्ता हिंसा का है। ऐसे आंदोलन को आतंकवादी संगठन कहें या नहीं—इस बात में विवाद है। जम्मू और काश्मीर आतंकवाद के सबसे बड़े घेरे में है। भारत सरकार के प्रति असंतुष्टि, पाकिस्तान की कूटनीति तथा प्रदेश में कट्टरवाद का प्रभाव—सभी कुछ मिलकर आतंकवाद का एक बड़ा फार्मूला बन गया है और भारतीय समाज के लिए एक बड़ा सरदर्द।

लेकिन लगता है कि आतंकवादियों को ये सब काम करने पड़ते है और अपने लक्ष्य सिद्धि के लिए ये कार्य उनके सहायक है। उनके चाहने वालों का जन-समर्थन तथा मनोवैज्ञानिक आधार उत्पन्न करना, दुश्मन के सफाये से अपने सदस्यों का मनोबल बनाए रखना और सरकार को अपने विरुद्ध उत्तेजित करना—सभी कुछ आतंकवादी कूटनीति का हिस्सा है। जहां आतंकवाद की सृष्टि होगी वहां सब कुछ होगा।

सवाल यह है आखिर आतंकवाद का निबटारा कैसे किया जाए? अनुभव यह बताता है कि आतंकवाद से निपटना इतना आसान काम नहीं है। आतंकवाद अब प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं के विरोधी स्वर भी बन गया है या कहिए प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं का उलट। प्रजातांत्रिक प्रक्रियाएं सहमति की प्रक्रियाएं हैं। आतंकवाद जोर जबरदस्ती की प्रक्रिया। आतंकवाद असहमति का ऐसा प्रदर्शन है जिसमें बहस की कोई गुंजाइश नहीं—न ही आंतरिक स्तर पर और न ही बाह्य स्तर पर। लगता है आतंकवाद का कई चीजों से कोई रिश्ता नहीं है। जैसे स्वयं तानाशाही वाले राष्ट्रों में आतंकवादी समूह खड़े हुए है। ऐसे आतंकवादी समूहों का उद्देश्य संभवतः उदारवाद लाना है। पर उदारवाद लाने का यह तरीका गलत ही है। उपनिवेशवाद के विरुद्ध एक लड़ाई गांधीजी ने और रंगभेद के खिलाफ एक लड़ाई नेल्सन मंडेला ने भी लड़ी थी। उनके शांतिप्रिय अहिंसक आंदोलन रंगभेद नीतियों के पोषक तथा

उपनिवेशवादियों के लिए आतंक थे। शायद इन दोनों ताकतों के लिए आतंकवाद को हिंसा से कुचलना आसान था—पर गांधी का अहिंसक सत्याग्रह उनकी हिंसा के हथियारों को भोंथरा ही करता था।

राष्ट्रीयता के निर्माण का संबंध आर्थिक विकास से भी है। आर्थिक गैर-बराबरी समृद्धि और एकता दोनों को ही स्थापित नहीं करती। गैर-बराबरी का शोषण तथा उत्पादन के साधनों से आमवंचना अहिंसा का सोच नहीं लाती। भारत के गांवों में कुछ ऐसा ही हुआ है। सामंती उपनिवेशवादी आर्थिक परिस्थितियां और मानसिकता के विरुद्ध किसानों के आंदोलन देश की आजादी से पहले भी हुए है और बाद में भी। तेलांगना के आंदोलन ने भूदान यज्ञ के अहिंसक आंदोलन को जन्म तो दे दिया, पर भूमि सुधार की समस्या उससे हल नहीं हुई। नक्सलवादी आंदोलन आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं की देन है, यह निर्विवाद सत्य है। दूसरे, किसी आतंकवाद से इसका चरित्र भी भिन्न है और स्थानीय स्तर से उपजे इस आंदोलन की जड़ें भी गहरी हैं। कभी कभी यह सवाल महत्वपूर्ण हो जाता है, क्या गोलियों के विरुद्ध गोलियां नक्सलवाद का जवाब है। बढ़ते दमन, शोषण और आर्थिक अवसरों की वंचना ऐसे अनेक समूह उत्पन्न कर देंगे जो नक्सली व्यवहार के ही होंगे। स्वतंत्र भारत के विकास की आकांक्षाओं ने आम-कुंठाएं भी पैदा की है—इस तथ्य को हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। ये ही कुंठाएं नक्सलवाद की भूमिका है। रास्ता गलत होते हुए भी हमें नक्सलवाद के विरुद्ध कानून और गोलियों से नहीं अपितु आर्थिक विकास और सुधारों से लड़ना पड़ेगा।

ठीक यही बात उत्तर पूर्वी सीमांत के आंदोलनों के संबंध में कही जा सकती है। आखिर इन क्षेत्रों और कुछ सीमा तक कश्मीर के लोगों को भारतीय व्यवस्था में विश्वास क्यों नहीं है? इस देश में बहुत से अलगाव के आंदोलन अपनी पहचान के आंदोलन है और संयोगवश यह पहचान का संकट सबसे अधिक आदिवासी इलाकों से उभरा है। जिस तेजी से नक्सलवाद आदिवासी क्षेत्रों में फैला है उसने आदिवासियों के सामने अपने अस्तित्व तथा निराशा के आधार रख दिए है। सवाल यह है कि आखिर स्वतंत्रता के बाद हमारी नीतियों ने एक बड़े वर्ग में अविश्वास कैसे उत्पन्न कर दिया?

प्रश्न यह भी है कि आखिर भारत जैसे बहुलवादी, समन्वयवादी इतिहास और सामंजस्यता के मूल्यों वाले समाज में उन शक्तियों का क्या करें जो 'बहुमत' तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम पर नया इतिहास तथा नई राजनीति के रचने का काम कर रहे है। मुस्लिम अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियाएं इस देश में ऐसे ही नहीं पसर गई हैं। आखिर हिंदुत्व धमका किसे रहा है? विश्व हिंदू परिषद का अंतर्राष्ट्रीय हिंदूवाद अंतर्राष्ट्रीय मुस्लिमवाद को प्रोत्साहित कर सकता है। हिंदुस्तान का आम मुसलमान परदेशी है—यह बात किसने फैलाई? मुसलमानों के विरुद्ध मिथक किसने गढ़े? और मुस्लिम ही राष्ट्र विरोध की जड़ है—यह बात किसने कही? स्वतंत्र भारत में उभरा दृष्टिकोण भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सोच और परंपरा से अलग है। गुथी हुई संस्कृति भारत के बहुलतावाद की पोषक है—यह सीधी बात न तो ये नई शक्तियां समझना चाहती है और न ही इसके प्रतिक्रियास्वरूप उपजी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी शक्तियां। 'धर्म युद्ध' और 'जेहाद' दोनों ही एक आधार के दो पहलू है। भारतीय उपमहाद्वीप में कट्टरवाद की अंतिम परिणति आतंकवाद ही है। संभवतः इसका निदान मात्र भारत के बहुलवाद के मूल सिद्धांतों की सुरक्षा ही है। बहुलता का व्यावहारिक पक्ष पारस्परिक सामंजस्यता का है। यदि यह सामंजस्य किसी कारण से प्रभावित हुई तो देश के विखंडन का खतरा पैदा हो सकता है। भारत का आतंकवाद केवल भारत से अलग होने के लिए किया जा रहा आतंकवाद ही नहीं है—सांप्रदायवाद तथा साथ जुड़े उग्रवाद का भी आतंकवाद है।

भारत के बारे में एक धारणा अब बलवती हो चली है कि यह देश एक मुलायम (Soft) राज्य है। जिस देश में यह साफ कहा जाए कि एक वर्ग सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को भी मानने के लिए तैयार नहीं है, वही वर्ग राष्ट्र की संसद नेतृत्व तथा संवैधानिक स्थापित मान्यताओं को भी चुनौती दे, बढ़ते हुए अपराधों और राजनीतिक षड्यंत्रों का विरोध न कर सके और अपराधी बेदाग छूटते रहे तथा कभी कभी ऐसा लगता है कि आतंकवाद के जवाब में पोटो जैसा बिल और राजनीतिक बयान ही लहराए जाएं, तब किस प्रकार के रास्ते प्रशस्त है? जब हम घरेलू

आतंकवाद पर ही नियंत्रण नहीं कर पाए है तो अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद से क्या जूझेंगे? अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की अपनी संगठनीय क्षमताएं है, सहयोग है, सुविधाएं है तथा रणनीतियां है। मुलायम राज्य अपनी प्रशासनिक अक्षमताओं तथा नरमी के कारण इस प्रकार के आतंकवाद को झेलने में समर्थ नहीं होता। कानून बनाना एक काम है और आतंकवाद रोकना दूसरा। आतंकवादी गतिविधियों को भारत की नरमी, लगता है कुछ अधिक ही शह दे गई है। विद्रोह के अपने आयाम है और क्रांति के अपने पक्ष। पर आतंकवाद इन सबसे कुछ अलग ही है।

भारतीय समाज का चरित्र सहनशीलता तथा पारस्परिक सामंजस्यता का चरित्र है। इसके लिए इसी वैचारिकता से प्रतिबद्ध नेतृत्व भी चाहिए। आजादी के कुछ वर्षों तक ऐसा चरित्र मौजूद था, जिसने भारत के लक्ष्यों को बनाया भी था और संवारा भी था। बाद के नेतृत्व में देश के प्रति जिम्मेदारियां प्रभावशील नहीं थी। आपाधापी और पारस्परिक विद्वेष ने वे परिस्थितियां उत्पन्न नहीं की थी, जो एक देश के सामाजिक आधारों की समझ और व्यवहार को अच्छी तरह से पोषित कर सकती है। कोई भी अच्छा नेतृत्व जन-जोश का उन्नायक भी होता है। देश में जिस तरह से असहमति के स्तर गायब हुए है और सर्वोच्च स्तर से निम्न स्तर तक जिस प्रकार बहसें नहीं चलती है और जिस तरह से समाज खामोश है—आतंकवाद इन सारी परिस्थितियों में पीड़ा और त्रासदी के रूप में उभरा है। राजनीति की हिंसा का रूप होते हुए भी, इसके साथ बहुत से सामाजिक प्रश्न जुड़े हुए है। आतंकवाद की समस्या के निदान इन्हीं सामाजिक प्रश्नों के हल करने के साथ जुड़े हुए है।